सनातन धर्म में जल तथा जलाशय का संरक्षण

सनातन धर्म में जल एवं जलाशयों के प्रति देवत्व की भावना रही है। हमारे लिए जल केवल हाइड्रोजन और ऑक्सीजन का सम्मिश्रण H_2O नहीं है। वैशेषिक दर्शन में जल को दूसरा द्रव्य माना गया है- पृथिवी, अप् (जल), तेज (अग्नि), वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा एवं मन ये नौ द्रव्य दर्शन में स्वीकृत हैं। इनमें जल का लक्षण है- **शीतस्पर्शवत्य आपः।** जल में शीतलता होती है। इसके दो प्रकार माने गये हैं- नित्य एवं अनित्य। नित्य जल परमाणु के रूप में हैं तो अनित्य जल कार्य रूप में दृष्टिगोचर हैं। ये पुनः शरीर, इन्द्रिय एवं विषय के भेद से तीन प्रकार के हैं। जल शरीर के रूप में वरुणलोक में प्रतिष्ठित है, इन्द्रिय के रूप में रस का अनुभव करानेवाली जिह्वा के अगले भाग पर विराजमान है तथा विषय के रूप में नदी, समुद्र आदि हैं। अन्नम्भट्ट ने 'तर्कसंग्रह' नामक ग्रन्थ में इस प्रकार उल्लेख किया है-

शीतस्पर्शवत्य आपः। ताश्च द्विविधा नित्या अनित्याश्चेति। नित्याः परमाणुरूपाः। अनित्याः कार्यरूपाः। ताः पुनस्त्रिविधाः शरीरेन्द्रियविषयभेदात्। शरीरं वरुणलोके। इन्द्रियं रसग्राहकं रसनं जिह्वाग्रवर्ति। विषयः सरित्समुद्रादिः॥[1]

जल एवं जलाशय के देवता वरुण

इस प्रकार, जल का जो देवमय शरीर है, वह वरुणलोक में प्रतिष्ठित है। भविष्य-पुराण के मध्यम पर्व भाग 2 अध्याय 19 में वापी, कूप, तडाग आदि के उत्सर्ग करने का विस्तृत विधान किया गया है। वहाँ संकल्प-वाक्य भी उपलब्ध है, जिसमें स्पष्ट है कि ये सभ प्रकार के जलाशय वरुणदैवत, जिनके देवता वरुण हों, कहे गये है।

ओमित्यादिश्रीकृष्णद्वैपायनाभिधान वेदव्यासप्रणीत भविष्यपुराणोक्त फलप्राप्तिकामश्चतुष्कोणाद्य-वच्छिन्न-मत्कारित-पुष्करिणीजलमेतदूर्जितं गंधपुष्पाद्यर्चितं वरुणदैवतं सर्वसत्त्वेभ्यः स्नानावगाहनार्थ-महमुत्सृजे॥233॥

ततो वरुणसूक्तेन वरुणं नागसंयुतम्॥

मकरं कच्छपं चैव तोयेषु परिनिक्षिपेत्॥234॥

पूजयेद्वरुणं देवमर्घ्यं दद्याद्विशेषतः॥

यहाँ संकल्प के बाद ऋग्वेदोक्त वरुणसूक्त से हाथी पर चढ़े हुए वरुण देवता का ध्यान करें, तथा मकर, कच्छप जल में छोड़ दें। इसके बाद वरुण की पूजा कर विशेषार्घ्य दें। इस प्रकार यह भी कहा जाता है कि रात्रि में स्नान निषिद्ध है, क्योंकि वरुण देवता सोये हुए रहते हैं।

[1] अन्नम्भट्ट, तर्कसंग्रह, यशवन्त वासुदेव यथल्ये (सम्पादक), 1918ई., बम्बई संस्कृत सीरीज, बम्बई, पृ. 7-8

जलाशयों को पवित्र रखने के लिए नियम

सनातन धर्म में सभी प्रकार के जलाशयों को शुद्ध एवं पवित्र रखने के नियम बनाये गये थे। प्राचीन काल में सामान्य लोग पैखाना-पेशाब के लिए बाहर जाते थे, लेकिन किन स्थानों पर मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए, उसके लिए नियम बनाये गये थे। मित्रमिश्र ने 'वीरमित्रोदय' में मनुस्मृति के वचन को उद्धृत किया है-

हल से जोती गयी खेत में, जल में, तथा चिता की जगह अथवा ईंट आदि से बने किसी चैत्य पर तथा पहाड़ पर पेशाब न करें- **न फालकृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते।**[2] यहीं आगे कहा गया है कि **"न नदीतीरमासाद्य न च पर्वत मस्तके।"**[3] मित्रमिश्र आगे देवल को उद्धृत कर लिखते हैं कि सूखी ही वापी, कूप, नदी, गाय के रहने का स्थान, जल, मार्ग, भस्म, अग्नि, जहाँ काम्य कर्म किये गये हों, श्मशान इन स्थलों पर पैखाना-पेशाब नहीं करना चाहिए।

वापीकूपनदीगोष्ठचैत्याम्भः पथि भस्मसु।
अग्नौ काम्ये श्मशाने च विण्मूत्रं न समाचरेत्॥[4]

कूर्मपुराण तथा यम-स्मृति में भी यही बात आयी है। यम-स्मृति के वचन में जलाशयों के चार प्रकार भी उल्लिखित हैं – पल्वल, तड़ाग, नदी तथा प्रस्रवण। मित्रमिश्र ने पल्वल को छोटा तालाब तथा तड़ाग को विशाल तालाब माना है।[5] आगे पैठीनसि एवं दक्ष के वचन को उद्धृत करते हुए कहा गया है कि पैखाना-पेशाब के बाद शुद्धि के लिए सीधे जलाशय से जल नहीं लेना चाहिए, यानी हाथ से सीधे जल लेकर शौच क्रिया नहीं करनी चाहिए, बल्कि उससे जल निकालकर जमीन पर आकर करना चाहिए- **तीर्थे शौचं न कुर्वीत कुर्वीतोद्धृतवारिणा।**[6] आदित्य-पुराण का मत है कि यदि मान लीजिए किसी छोटा गड्ढा में जल है, उससे जल निकालना सम्भव नहीं है, तो हाथ से भी शौच कर सकते हैं, किन्तु जिस स्थान पर शौचक्रिया की गयी है, उसकी शुद्धि करें- **यस्मिन् स्थाने कृतं शौचं वारिणा तत्तु शोधयेत्।**[7]

अतिप्रचलित धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ 'धर्मसिन्धु' में व्यवस्था दी गयी है कि जलाशय से कम से कम 12 हाथ की दूरी पर मूत्रत्याग करना चाहिए, यदि स्थान है तो 16 हाथ की दूरी रखें तथा इससे चार गुना दूरी पर ही मलत्याग करें। ये सारे नियम हमें प्राचीनकाल में जलाशय को शुद्ध रखने के प्रयास के इंगित करते हैं।

हस्तान् द्वादश संत्यज्य मूत्रं कुर्याज्जलाशयात्।
अवकाशे षोडश वा पुरीषे तु चतुर्गुणम्॥[8]

जलाशय निर्माण की फलश्रुति

जलाशय निर्माण की फलश्रुति अनेक स्थानों पर उपलब्ध हैं, किन्तु सबसे अधिक विस्तार के साथ महाभारत[9] के अनुशासन पर्व में अध्याय संख्या 99 में युधिष्ठिर के प्रश्न पर भीष्म वापी, कूप तड़ाग आदि के निर्माण की फलश्रुति बताते हैं। इससे कुछ श्लोक को हेमाद्रि ने भी दानखण्ड में उद्धृत किया है। साथ ही, वैखानस आगम की भृगुसंहिता के 35वें अध्याय में इसे अविकल संकलित कर लिया गया है।

औदकानि च सर्वाणि प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः॥111॥

2. मित्र मिश्र, वीरमित्रोदय, खण्ड 2, आह्निक प्रकाश, पर्वतीय नित्यानन्द शर्मा (सम्पादक), 1910 ई., चौखम्भा संस्कृत बुक डिपो, बनारस, पृ. 33
3. तदेव 4. तदेव 5. तदेव, पृ. 34 6. तदेव, पृ. 43-44 7. तदेव
8. काशीनाथोपाध्याय, धर्मसिन्धु, कृष्णजी रामचन्द्र शास्त्री नवरे (सम्पादक), 1888ई., निर्णय सागर प्रेस बम्बई, पृ. 194
9. महाभारत, भाग 4, एशियाटिक सोसायटी बंगाल, 1839, पृ. सं. 104

तटाकानां च वक्ष्यामि कृतानां चापि ये गुणाः। त्रिषु लोकेषु सर्वत्र पूजनीयः प्रतापवान्॥112॥

अब मैं सभी प्रकार के जलाशयं के बारे में बारी-बारी से कहता हूँ। सबसे पहले तड़ाग के बारे में कहता हूँ कि जो तड़ाग का निर्माण कराते हैं, वे तीनों लोकों में हर जगह पूजित तथा प्रतापी होते हैं।

अथ वा मित्रसदनं मैत्रं मित्रविवर्धनम्। कीर्तिसंजननं श्रेष्ठं तटाकानां निवेशनम्॥113॥

तड़ाग का निर्माण सूर्यलोक के समान है, सूर्य के समान है। वह सासंसारिक मित्रता को बढ़ाता है।

धर्मस्यार्थस्य कामस्य फलमाहुर्मनीषिणः।तटाकं सुकृतं देशे क्षेत्रमेकं महाश्रयम्॥114॥

उन्हें धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति होती है। एक स्थान में सुन्दर तालाब के निर्माण से पूरा क्षेत्र सब के लिए विशाल आश्रय बन जाता है।

चतुर्विधानां भूतानां तटाकमुपलक्षयेत्। तटाकानि च सर्वाणि दिशन्ति श्रियमुत्तमाम्॥115॥

चार प्रकार के प्राणियों के लिए तड़ाग को मानना चाहिए। सभी तालाब उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति कराता है।

देवा मनुष्या गन्धर्वाः पितरो यक्षराक्षसाः।स्थावराणि च भूतानि संश्रयन्ति जलाशयम्॥116॥

देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पितर, यक्ष, राक्षस, स्थावर और सभी प्राणीगण जलाशय में वास करते हैं।

तस्मात्तांस्तु प्रवक्ष्यामि तटाके ये गुणास्स्मृताः। या च तत्र फलावाप्तिरृषिभिस्समुदाहृता॥117॥

इसलिए तड़ाग के जो गुण कहे गये हैं और ऋषियों के द्वारा निर्माण करने के जो फल कहे गये हैं, वे यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

वर्षाकाले तटाके तु सलिलं यस्य तिष्ठति। अग्निहोत्रफलं तस्य फलमाहुर्मनीषिणः॥118॥

शरत्काले तु सलिलं तटाके यस्य तिष्ठति। गोसहस्रस्य सम्प्रेत्य लभते फलमुत्तमम्॥119॥

हेमन्तकाले सलिलं तटाके यस्य तिष्ठति। स वै बहुसुवर्णस्य यज्ञस्य लभते फलम्॥120॥

यस्य वै शैशिरे काले तटाके सलिलं भवेत्। तस्याग्निष्टोमयज्ञस्य फलमाहुर्मनीषिणः॥121॥

तटाकं सुकृतं यस्य वसन्ते तं महाश्रयम्। अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं स समुपाश्नुते॥122॥

निदाघकाले पानीयं तटाके यस्य तिष्ठति। वाजिमेधफलं तस् फलं वै मुनयो विदुः॥123॥

वर्षाकाल में जिनके तड़ाग में जल रहे तो वे अग्निहोत्र का फल पाते हैं। शरत्काल में जल रहे तो उन्हें सहस्र गोदान का फल मिलता है। हेमन्त काल में भी जिनके तड़ाग में जल रहता हो, वे बहुत सुवर्ण दक्षिणा के साथ यज्ञ कराने का फल पाते हैं। यदि शिशिर काल में भी जल रहे, तो उसके लिए अग्निष्टोम यज्ञ कराने का फल कहा गया है। यदि वसन्त काल में भी महान् आश्रय वाले तड़ाग में जल रहे तो उन्हें अतिरात्र यज्ञ का फल मिलता है। जिनके द्वारा खुदाये गये तड़ाग में ग्रीष्म ऋतु में भी जल रहे वे तो अश्वमेध यज्ञ का फल पाते हैं।

स कुलं तारयेत्सर्वं यस्य खाते जलाशये। गावः पिबन्ति सलिलं साधवश्च नरास्सदा॥124॥

वे अपने कुल का उद्धार कर देते हैं, क्योंकि उनके तड़ाग में गायें, साधुगण तथा मनुष्य जल पीते हैं।

तटाके यस्य गावस्तु पिबन्ति तृषिता जलम्। मृगपक्षिमनुष्याश्य सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥125॥

जिनके तड़ाग में प्यासी गायें तथा मृग, पक्षी, पशु तथा मनुष्य जल पीते हों, वे अश्वमेध यज्ञ का फल पाते हैं।

यत्पिबन्ति जलं तत्र स्नायन्ते विश्रमन्ति च। तटाकदस्य तत्सर्वं प्रेत्यानन्त्याय कल्पते॥126॥

जो वहाँ जल पीते हैं, स्नान करते हैं, विश्राम करते हैं, उसके सारे फल तड़ाग खुदबाने वाले व्यक्ति को अनन्त काल के लिए जाता है।

दुर्लभं सलिलं चेह विशेषेण परत्र वै। पानीयस्य प्रदानेन प्रीतिर्भवति शाश्वती॥127॥

इस लोक में तथा विशेष रूप में पीने योग्य जल दुर्लभ होता है, अतः पीने लायक पानी देने से शाश्वत प्रेम होता है।

तटाके यस्य पानीयं पानीयाय जगत्पतेः। तस्य पुण्यफलं वक्तुं नालं देवास्सहानुगाः॥128॥

जिसके तड़ाग का जल जगत् के स्वामी को अर्पित किया जाता हो, उसके पुण्य का फल कहने में अपने अनुसरणकर्ताओं के साथ देवता भी कहने में असमर्थ हैं।

तटाके यस्य पानीये सायं प्रातर्द्विजातयः।स्नात्वा कुर्वन्ति कर्माणि तस्य नाकेस्थितिर्भवेत्॥129॥

जिसके तडाग के जल में द्विज प्रातःकाल तथा सन्ध्याकाल स्नान कर संध्यावन्दनादि कर्म करते हैं, उनका वासस्थान स्वर्ग में होता है।

राजा के द्वारा जलाशय की मरम्मत एवं जीर्णोद्धार

इस विषय में सबसे अधिक प्रखर फलश्रुति हमें क्षत्रप रुद्रदामा के शिलालेख[10] (150 ई.) में मिलता है। गिरिनार पर्वत स्थित सुदर्शन झील मूल रूप से चन्द्रगुप्त मौर्य के अन्तर्वर्ती शासक पुष्यगुप्त के द्वारा बनवाया गया था। बाद में अशोक के काल में यवनराज तुषास्फ के द्वारा इससे नहरें निकाली गयीं थीं। इस प्राचीन झील का बाँध बाढ़ के कारण टूट गया था, जिससे कारण प्रजा में जल-संकट उपस्थित हो चुका था। रुद्रदामा ने प्रजा से अतिरिक्त कर लिये विना अथवा प्रजा जन से दया करने का आग्रह किये विना तथा उनसे बेगार कराये विना अपने कोष से सारा धन व्यय कर इस झील को तीन गुना बढाकर बनवाया, जिससे रुद्रदामा के यश में वृद्धि हुई।

जलाशय को हानि पहुँचाने पर दण्ड-विधान

जलाशय के बाँध को यानी भिंडा को तोड़नेवाले के लिए मनु ने मृत्युदण्ड का विधान किया है। भले ही यह आज प्राचीन भारत का क्रूर दण्ड प्रतीत होता हो, परन्तु इससे जल-संरक्षण के प्रति राजा की चिन्ता तो अवश्य झलकती है।

तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा। यद् वाऽपि प्रतिसंस्कुर्याद् दाप्यस्तूत्तमसाहसम्॥279॥[11]

तडाग को तोड़नेवाले का वध जल में डुबाकर अथवा अन्यविधि से करना चाहिए। लेकिन यदि वह अपने द्वारा तोड़े गये अंश की मरम्मत करवा देता है तो उसे उत्तम साहस दण्ड देना चाहिए।

याज्ञवल्क्य[12] ने लिखा है कि गले में पत्थर बाधकर जल में डुबाकर वध करना चाहिए। अपरार्क द्वारा उद्धृत यम के वचन में एक नयी बात सामने आती है कि यदि कोई व्यक्ति तालाब में जल पहुँचने के रास्ते को रोकता है, तो उसे उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिए। 'विवादरत्नाकर' में तो चण्डेश्वर ने तालाब के समीप कचड़ा फेंकने वालों के लिए भी दण्ड का विधान किया है कि उन्हें 100 पण जुर्माना देना होगा तथा उसकी सफाई भी करनी होगी- **पथ्युद्यानोदकसमीपेषु अशुचि-उत्करादित्यागे पणशतं तच्चापास्येति।**[13] आगे चण्डेश्वर ने कात्यायन को उद्धृत कर लिखा है कि तड़ाग, उद्यान तथा तीर्थ अर्थात् नदी के घाट को जो गंदी वस्तुओं से यानी कचड़ा फेंक कर नष्ट करता है, उससे सफाई कराना चाहिए तथा जुर्माने की पूर्वोक्त राशि यानी 100 पण दण्ड के रूप में लेनी चाहिए-

[10] सहाय, शिवस्वरूप, भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, भाग 1, 1977ई. मोतीलाल बनारसी दास (प्रकाशक), पृष्ठ संख्या 209-217

[11] मनुस्मृति, 9.279

[12] याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.278, वीरमित्रोदय एवं मिताक्षरा सहित, नारायण शास्त्री खिस्ते, 1930, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, पृ. 725

[13] चण्डेश्वर, विवादरत्नाकर, कमलकृष्ण स्मृति, 1931, एसियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, तीर्थ, पृष्ठ संख्या 220

तडागोद्यानतीर्थानि योऽमेध्येन विनाशयेत्।
अमेध्यं शोधयित्वा तु दण्डयेत् पूर्वसाहसम्॥[14]

इसी स्थल पर चण्डेश्वरोक्त मनुस्मृति के वचन के अनुसार यदि कोई व्यक्ति भय दिखाकर घर, तालाब, बगीचा तथा खेत को अपने कब्जे में कर ले, तो 500 पण दण्ड का भागी होता है, लेकिन यदि अनजान होने कारण अपना समझ ले तो 200 पण दण्ड का भागी होता है।[15] यह वर्तमान उपलब्ध मनुस्मृति के 8वें अध्याय का 264वाँ श्लोक है।[16] दण्डविधान में बाँध, कूप, वापी, तड़ाग आदि का निर्माण करनेवाले को यह छूट दी गयी है कि यदि अपनी जमीन में तालाब बना रहे हैं और दूसरे की थोड़ी जमीन होने के कारण बाधा पहुँच रही है, तो कार्य नहीं रोका जाना चाहिए।[17] इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन काल में जलाशयों के निर्माण तथा उसके संरक्षण के प्रति हमारे पूर्वज बहुत अधिक संवेदनशील रहे हैं।

तालाबों में जाठि यष्टि का महत्त्व

तालाब के बीच में जामुन या सँखुआ का एक खम्भा गाड़ा जाता है। यह विधि तालाब के लिए किये गये यज्ञ के दिन सम्पन्न होती है। इस खम्भे को जाठि < यष्टि (संस्कृत) कहते हैं। मान्यता है कि जिस तालाब में यह जाठि गाड़ा हुआ है, उसी तालाब के जल का उपयोग धार्मिक कार्यों में हो सकता है। प्रचलित मान्यता के अनुसार जिसमें यह जाठि नहीं गाड़ा गया हो, उसे कुँवारी पोखरा कहने का भी रिवाज है। इस मान्यता के कारण जाठि गाड़ने की प्रक्रिया को पोखरा के विवाह से जोड़ा जाता है। वास्तविकता है कि तालाब खुदवाने वाले अपनी जमीन पर अपने धन का व्यय करते हैं, अतः वह उनकी सम्पत्ति होती है। जब तक उस तालाब को सार्वजनिक हित में वे उत्सर्ग नहीं करते हैं तब तक दूसरे कोई व्यक्ति उस तालाब के उपयोग का अधिकारी नहीं है। यदि ऐसी स्थिति में कोई व्यक्ति उस तालाब का उपयोग करता है तो वह दूसरे की सम्पत्ति के उपयोग करने के पाप का भागी होता है।

जिस दिन तालाब का यज्ञ किया जाता है, उस दिन यजमान संकल्प लेकर उसका उत्सर्ग करते हैं तथा उसके बाद से तडाग-निर्माणरूप पूर्त के लिए श्रुति-स्मृति में कहे गये पुण्यों के वे भागी होते हैं तथा सामान्य व्यक्ति उस तालाब के जल का उपयोग स्नान, देवताभिषेक आदि के लिए अर्ह हो जाते हैं। तालाब कूप आदि खुदबाने वालों के फल का विस्तार से वर्णन भविष्यपुराण के उत्तर पर्व के 217वें अध्याय में आया है।

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि अज्ञात व्यक्ति कैसे समझेगा कि इस तालाब को पूर्त के अन्तर्गत दान किया गया है अथवा नहीं- इसी के संसूचन के लिए तालाब के बीच में जाठि या यष्टि गाड़ दिया जाता है। यह लगभग 300 वर्षों तक रहता है। इसकी लंबाई तालाब की जल-ग्रहण क्षमता के बराबर होती है। व्यावहारिक रूप से तालाब में जल की कमी होने पर यह यष्टि ऊपर से टूटते जाता है। जो अंश पानी के अंदर रहता है, वह जल्दी नहीं टूटता। हम तालाब की जल-ग्रहण क्षमता तथा जाठि की वर्तमान लंबाई को देखकर तालाब की प्राचीनता का भी अनुमान लगा सकते हैं।

सनातन धर्म में तालाब में स्नान की विधि

तालाब एवं में गाद जम जाने से वह धीरे धीरे भरता जाता है। अतः सनातन धर्म में इसके लिए व्यवस्था की गयी है कि कूप तथा तालाब में स्नान, तर्पण करने से पूर्व उससे मिट्टी निकालकर ऊपर कर लेना चाहिए। यह व्यावहारिक रूप से सफाई

[14] तदेव, पृ. 220 [15] तदेव, पृ. 220
[16] मनुस्मृति, नवटीकोपेत, जयन्तकृष्ठ हरिकृष्ठ दवे (सम्पादक), चतुर्थ भाग, पृष्ठ संख्या-449
[17] चण्डेश्वर, उपरिवत्, पृष्ठ संख्या- 222

की प्रक्रिया है, जिसके सम्बन्ध में शास्त्रकारों ने व्यवस्था दी है। याज्ञवल्क्य के अनुसार दूसरे के द्वारा खुदवाये गये तालाब में से मिट्टी के पाँच पिण्ड निकालने के बाद ही उसमें स्नान करना चाहिए-

पञ्चपिण्डाननुमुद्धृत्य न स्नायात् परवारिषु।
स्नायान्नदीदेवखातह्रदेषु च सरःसु च॥

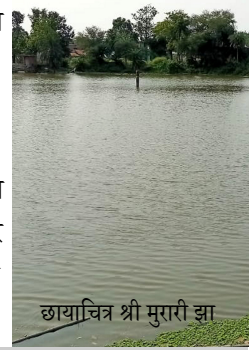
छायाचित्र श्री मुरारी झा

जाठि के साथ तालाब

अर्थात् पाँच पिण्ड के बराबर मिट्टी निकाले विना दूसरे के जलाशय में स्नान नहीं करना चाहिए। लेकिन नदी, देवता द्वारा निर्मित जलाशय तथा प्राकृतिक झील में उसके विना भी स्नान कर सकते हैं। इस विषय में लक्ष्मीधर ने आगे व्याख्या की है कि पैठीनसि तथा बौधायन ने जो पाँच पिण्ड मिट्टी तथा तीन घट जल निकालने की बात कही है वह सेतु एवं कूप के सम्बन्ध में है। विष्णुस्मृति में जो पाँच पिण्ड मिट्टी बाहर निकालने की बात है, वह कृत्रिम जलाशय के प्रसंग में है। यह नियम स्नान के प्रसंग में है, किन्तु यदि उस जल से तर्पण करते हैं, तो वापी, कूप तथा तड़ाग से क्रमशः सात, पाँच तथा तीन पिण्ड मिट्टी निकालना चाहिए –ऐसा शंखलिखित के द्वारा कहा गया है-

पैठीनसि बौधायनवचनात् स्नानकर्तुर्मृत्पिण्डाम्बुघटत्रयोद्धरणं सेतुकूपविषयम्। पञ्चपिण्डोद्धरणं तु विष्णूक्तमेतदतिरिक्तकृत्रिमजलविषयम्। यत्तु शङ्खलिखितोक्तं सप्तपञ्चत्रयमृत्पिण्डोद्धरणं तत्तर्पणार्थं यथासंख्यं वापीकूपतडागविषयम्।[18]

शङ्खलिखित स्मृति के अनुसार यदि दूसरे के द्वारा खोदे गये तालाब में उपर्युक्त विधि से पाँच पिण्ड निकालकर भी हम स्नान करते हैं तो केवल शरीर की शुद्धि होती है, स्नान का फल नहीं होता है। स्नान करने के बाद अग्नि का सेवन करना तथा दूसरे के जल में स्नान करने से केवल शरीर की शुद्ध होती है, स्नान का फल नहीं होता

स्नातस्य वह्नितप्तेन तथैव परवारिणा।
शरीरशुद्धिर्विज्ञेया न तु स्नानफलं भवेत्॥[19]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सनातन धर्म में जलाशयों को शुद्ध रखने के लिए छोटी-छोटी बातों पर भी कड़े नियम बनाये गये हैं। ये आचार के रूप में प्रचलित थे। आज जब हम गाँवों में तालाबों को भऱते जा रहे हैं, सारे कचरे हम उसी में फेंकते जा रहे हैं, तालाबों में बाहर से जल आने और निकलने के नाले को भरकर घर बनाते जा रहे हैं। इसी प्रकार, कूपों के साथ भी हमने व्यवहार किया है। कूप के रास्ते वर्षाजल अंदर जाकर भू-गर्भ जल बनते थे। हमने सभी कुओं को भर दिया, चापाकल और बोरिंग का व्यवहार हम करने लगे, तो हम जल-संकट को बुला रहे हैं।

इस संक्षिप्त विवेचना में हम देखते हैं कि सनातन धर्म में जल के प्रति हमारी अनन्य आस्था रही है। जल का संरक्षण, जलाशयों की सफाई आदि हमारे धर्म के अंग रहे हैं। आज जब इन्हें धर्म न मानकर उपभोक्तावादी प्रवृत्ति दिखाने लगे हैं तो हमें शुद्ध पानी मिलना दूभर हो गया है। हम आज पेय जल को व्यापार की वस्तु के रूप में देखने लगे हैं।

***

[18] लक्ष्मीधर, कृत्यक्लपतरु, नियतकालकाण्ड, खण्ड III, के.वी. रंगस्वामी आयंगर, 1950 ई., गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा, पृ. सं. 43

[19] तदेव, पृ. 50